निवेदिता पीएच.डी. शोधार्थी हिन्दी विभाग, जम्मू विष्वविद्यालय, जम्मू- 180006 **जम्मू कश्मीर**

भारतीय दर्षन में कर्म और भोग के ऊपर बहुत विचार हुआ है। स्वयं मनुष्य ही कर्ता है और स्वयं मनुष्य ही भोक्ता है। भारतीय संस्कृति में कर्म को महत्व प्रदान किया गया है। गीता में भी कर्म की विषेष **महागाथा** को व्यख्यायित किया गया है। परंतु आज वर्तमान समय में जिस प्रकार से पष्चिम की भोगवादी संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है उससे भारतीय चित, कर्म और भोग इन दोनों ही प्रष्नों को लेकर पूरी तरह से विचलित है। बाज़ारवाद ने सम्पूर्ण विष्व को इस भोगवादी संस्कृति के प्रति आकृष्ट किया है और उससे भोग की जो बाढ़ उमड़ रही है, उससे उभरना आज सबसे बड़ी चुनौती है। जीवन की आवष्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष जीवन प्रक्रिया है किन्तु आज के मनुष्य की महत्वकांक्षाएँ इतनी अधिक हो गयी हैं कि वह अजीवन अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए संघर्षरत है। वह सब कुछ पा लेना चाहता है। ऐसी ही प्यास के चलते वह अपने वर्तमान से दूर हो जाता है। ऐसी अप्रासंगिक और अर्थहीन चीज़ों में उलझ कर रह जाता है जिसके कारण वह यह देख नहीं पाता कि यह 'प्यास' क्या है और क्यों है। ऐसी परिस्थितियों के कारण आज का मनुष्य अपने वर्तमान को छोड़ एक ऐसी अन्धी दौड़ में भागे जा रहा है जिसकी न ही कोई मंज़िल है न ही कोई अन्त, क्योंकि मनुष्य की इच्छाओं, आकांक्षाओं का कोई अन्त नहीं। एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी जन्म लेती है। लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा रचित नाटक 'यक्षप्रष्न' समय, काल और प्यास की गहरी अर्थवता को प्रकट करता है। नाटक में पानी की प्यास बुझाने के लिए चारों पांडव अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव यक्ष की चुनौती स्वीकार नहीं करते और पानी पीते ही मर जाते हैं। अंत में युधिष्ठिर अपने भाईयों के मृत्यु के परिणाम को देखकर यक्ष की चुनौती स्वीकार कर उसके उŸार देने के लिए तैयार हो जाता है। प्यास बुझाने के लिए या अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही जीना और काल अर्थात वर्तमान की चुनौतियों को देखकर अनदेखा करने का प्रयास मनुष्य को मृत्यु की ओर ले जाता है। मृत्यु से आषय यहां व्यक्ति के शरीर की मृत्यु नहीं है बल्कि उसकी अन्तरात्मा की मृत्यु है जिसकी मृत्यु होने वह कभी भी शांत और संतुष्ट नहीं रह पाता। "समय उतना ही अपना है भागना केवल सपना है। जितने को हम देते उŸार समय उतना ही अपना है।"1 नाटक में एक वृंद नाम का गायक यक्ष और पाँच पाण्डवों की इस पौराणिक कथा को सुनाता है। किन्तु नाटक की मुख्य कथा में नकुल सेन, सहदेव शर्मा, भीम वर्मा, अर्जुन देव और सत्यप्रिय आधुनिक समय के चरित्र हैं। नाटककार ने इन चरित्रों को पाँच पांडवों के प्रतीकार्थ के रूप में लिया जो अपने समय के प्रष्नों से भागते हुए एक ऐसी स्थिति में पहुँचते हैं जहाँ उन्हें अपने समय से टकराना ही पड़ता है। सहदेव शर्मा युनिवर्सिटी की छात्र यूनियन का नेता है, भीमसेन और नकुलसेन उद्योगपति है और अर्जुनदेव राजनेता है। युवा नेता सहदेव शर्मा, मिल के मजदूरों के साथ अर्जुनदेव के कहने पर युनिवर्सिटी बंद करवा देता है। सहदेव शर्मा की प्यास परिवर्तन है। किन्तु एक छात्र की प्यास वास्तव में ज्ञान प्राप्ति होती है। यहाँ वह राजनेता और उद्योगपति अर्जुनदेव की प्यास बुझा रहा है। नाटककार ने यहाँ संकेत किया है कि आज का मनुष्य इतने खोखले आकर्षण में फँसा हुआ है कि वह यह नहीं जानता कि जिस प्यास को वह बुझाने का काम कर रहा है वह प्यास उसकी ही है या किसी और की दी हुई है? "राजनेता, उद्योगपति, अफसर आदि की प्यास बुझ रही है? कोई **उत्तर** देने की स्थिति में है? हर एक दूसरे पर उŸारदायित्व फेंक रहा है। और स्वयं उससे मुक्त बने रहने के प्रयत्न में, आडम्बर में लगा है।"2 आज हम ओरों के हाथों की कठपुतली बन कर एक ऐसी प्यास को बुझाने में लगे हैं जिसका कोई अन्त नहीं। इस प्यास के चलते मनुष्य समय के प्रति अपने उŸारदायित्व को भूल जाता है। प्रष्न उठता है समय के ऐसे कौन से प्रयष्न हैं जिनका मनुष्य सामना नहीं करता और उनसे भागता है। परिस्थितियां है अपने आस-पास का वातावरण। अपने काल की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक , सांस्कृतिक चुनौतियों को स्वीकार करना।

यक्ष अर्थात समय के प्रष्नों का **उत्तर** देने के लिए हम सब उŸारदायी हैं। नाटककार ने यक्ष और पाण्डवों की इस मिथकीय कथा द्वारा इसी सनातन सत्य को उदघाटित करने का प्रयत्न किया है। आज के अहं से ग्रस्त मानव जीवन की नियति

Copyright @ 2020 Authors

का उसने आम जन से साक्षात्कार करा दिया है। ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो यह जानने की कोषिष करेगा कि भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव सभी समय के प्रष्न का **उत्तर** न दे पाने के कारण क्यों और कैसे मरे, वही समय के **उत्तर** को जान पायेगा। अपने समय की चुनौतियों का सामना करते हुए अपने अहं को समाप्त कर 'मैं' से 'हम' और 'व्यक्ति' से 'समाज' की ओर बढ़ेगा।

व्यक्ति अपने अहं में इतना अंधा हो जाता है कि वह स्वयं के अनुभव को ही प्रमाण मानता है। युधिष्ठिर के सभी भाई अपने अहंकार के कारण ही यक्ष द्वारा पूछे प्रष्नों का **उत्तर** न देने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रष्नों का **उत्तर** देकर न केवल स्वयं की प्यास बुझाई बल्कि अपने भाईयों को नवजीवन भी प्रदान किया। लक्ष्मीनारायण लाल का नाटक 'बलराम की तीर्थयात्रा' अहं केन्द्रित व्यक्ति के आन्तरिक द्वन्द्व, आत्मयात्रा के विभिन्न पड़ावों से गुज़रते हुए आत्मसाक्षात्कार कराता है। व्यक्ति के अन्दर अहंकार इतना भर गया है कि अपने अहं के कारण वह अपने समाज से विमुख हो जाता है। 'बलराम की तीर्थयात्रा' में 'बलराम' व्यक्ति के इसी अहंकार के पुराण प्रतीक हैं। कौरवों और पाण्डवों की लड़ाई से क्रोधित बलराम तीर्थयात्रा के लिए निकलते हैं। अहंकार से ग्रस्त बलराम द्वारा रास्ते में सूतपुत्र रोमहर्षण की हत्या हो जाती है। इस हत्या के बाद पूरा नाटक बलराम के अन्तः संघर्ष का ही नाटक बन गया है। "बलराम : मैने यात्रा नहीं की। यात्रा का बहाना किया। बहाना ... वह गया ... रोमहर्षण ... मेरे रोम-रोम में जलन ... रणछोर। तुम्हारे रोम-रोम में हर्षण।"3

क्रोध में हुई इस हत्या के बाद बलराम अन्तर से कभी शान्त नहीं रह पाता। अपनी तीर्थयात्रा को अधूरा छोड़ कर वह एन्द्रिय भोगों मेंं डूबकर अपने आन्तरिक द्वन्द्व को भूलना चाहता है। बलराम को इस पीड़ादायक स्थिति में पहुँचाने नवाला उसका अहं है। इसी अहं से उत्पन्न 'मैं' रोमहर्षण की हत्या करवाता है, कर्तव्य से विमुख भोग की ओर उन्मुख करवाता है, कृष्ण के प्रति अनास्था उत्पन्न करवाता है। 'करणम' जो नाटक में बलराम का सेवक है किन्तु वह बलराम के व्यक्तित्व के अहकार के प्रतीक के रूप में चित्रित है। नाटक में बलराम का मुख्य संघर्ष करणम से है जो कि उसके अपने अहं का प्रतीक है। जब बलराम स्वयं अपने हाथों से उसे मार देते हैं तभी संघर्षमयी क्षणों मेंं आत्मसाक्षात्कार होता है। इस प्रकार यह पूरा नाटक मनुष्य के अहं को समाप्त कर व्यक्ति से समाज मेंं विलय तक की यात्रा का प्रतीक है जो एक सनातन सत्य है। वास्तव में नाटककार ने समाज में फैले दुख, दोषों के मूल में आज की अनास्थावादी द्दष्टि और कर्तव्यों से विमुखता को माना है।

पलायन किसी भी समस्या का हल नहीं है। मनुष्य अपने आसपास की विडम्बनात्मक स्थितियां को देख उनसे पलायन कर जाता है। वह निराष होकर अपने वातावरण, समाज को छोड़ कर एकांत में चला जाता है। "चुनौतियों को स्वीकार न करना या अपने उŸारदायित्वों से बचने का प्रयास वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास में बाधक है।"4

महाभारत के युद्ध में बलराम तटस्थ रहना चाहते थे। इसी कारण वह तीर्थयात्रा पर जाने का निष्चय करते हैं। एक द्दष्टि से यह बलराम की पलायनवादिता है। न्याय अन्याय के इस युद्ध में न्याय का साथ देने की अपेक्षा वे कŸार्व्यविमुख हो तीर्थयात्रा पर निकल पड़ते हैं। गोपी के शब्दांं मेंं "कौरव पांडव जब बात नहीं माने, तो उनपे प्रहार काहे नाही किया? गरीब गऊ सूतपुत्र को मारा।"5 आज का मनुष्य भी अनास्थावादी होकर अक्सर पलायन करता है। इसका उदाहरण हम इस रूप में देख सकते हैं कि आज हमारे समाजिक और राजनैतिक जीवन में भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है। समाज के ठेकेदार और राजनेताआेंंं ने सम्पूर्ण माहौल को भ्रष्ट बना दिया है। ऐसे में आम व्यक्ति इन त्रासद स्थितियों को सही करने के प्रयास की अपेक्षा इन स्थितियों से भगता है। अपनी इन असंगत स्थितियों को सुधारने की अपेक्षा वह अपनी सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र की भागडोर भ्रष्ट लोगों के हाथों में सोंपकर स्वयं पलायन कर जाता है। यही है नाटक 'बलराम की तीर्थयात्रा का वर्तमान सन्दर्भ जो महाभारत के इस मिथक में लपेटकर कहा गया है।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-12 No.03 December 2020

संदर्भ

1.लक्ष्मीनारायण लाल, यक्षप्रष्न, पृ. 39

2.लक्ष्मीनारायण लाल, यक्षप्रष्न, शब्द नहीं संवाद पृ. 8

3.लक्ष्मीनारायण लाल, बलराम की तीर्थयात्रा, पृ. 48

4.रमेष गौतम, हिन्दी के प्रतीक नाटक, पृ. 505

5.लक्ष्मीनारायण लाल, बलराम की तीर्थ यात्रा, पृ. 49

Copyright @ 2020 Authors